ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 195-201
ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-IV, Issues-22, YEAR- Oct.-Dec.-2021

भारतीय जनजातियों में सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन की दशा एवं दिशा एक अध्ययन

डॉ0 नरसिंह कुमार
सहायक प्रोफेसर– संग्रहालय विज्ञान विभाग, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (उ०प्र०), भारत

Received- 12.12. 2021, Revised- 17.12. 2021, Accepted - 21.12.2021 E-mail: narsinghigntu@gmail.com

सारांश: *'ट्राइब' शब्द लैटिन शब्द 'ट्रिबस' से लिया गया है, जिसका अर्थ है एक निवास स्थान। यह उन लोगों के एक सामाजिक समूह को दर्शाता है, जो एक ही तरह की भाषा, सामान्य विशेषताओं वाले हैं, एक ही सरकार है, जो कल्याण जैसे सामान्य उद्देश्यों के लिए एक साथ काम करती है। जनजाति दुनिया की आबादी के एक बड़े हिस्से का गठन करती है। भारत वह भूमि है जहाँ बड़ी संख्या में जनजाति की जनसंख्या पाई जाती है। जनजाति भूमि के मूल निवासी हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि वे जंगल के देखभाल करने वाले हैं। अपनी अमर संस्कृति के कारण आदिवासी लोगों का अपना अस्तित्व है। सबसे आकर्षक चीजें हैं उनकी रंगीन और एकजुट संस्कृति जैसे–लोक गीत, नृत्य, भाषा, कलात्मक कार्य, कृषि पैटर्न आदि, वे हमेशा अपने सांस्कृतिक ढांचें के साथ रहना चाहते हैं। लेकिन ये लोग विभिन्न कारणों से सामान्य आबादी से बहुत पीछे हैं। इसलिए आजादी के बाद अनुसूचित जनजातियों के हितों की रक्षा और सामाजिक अन्याय के लिए उन्हें बचाने के लिए आर्टिकल 46, 275, 330, 332, 335, 338, 340 के तहत संविधान में विशेष प्रावधान किया गया है। विशेष ध्यान देने के बाद प्राचीन से लेकर वर्तमान परिदृष्यतक उनके सामाजिक–सांस्कृतिक, राजनीतिक और शैक्षिक पैटर्न में कोई बदलाव आया है। यदि हाँ तो बदलते पैटर्न क्या हैं? इन सवालों के जवाब का पता लगाने के लिए एक वैचारिक अध्ययन किया गया था।*

कुंजीभूत शब्द– अमर संस्कृति, आदिवासी, अस्तित्व, लोक गीत, नृत्य, भाषा, कलात्मक कार्य, कृषि पैटर्न, लोकप्रिय।

आदिवासी समाज में होने वाले परिणाम और परिवर्तन जैसेसांस्कृतिक परिवर्तन, ज्ञान, दृष्टिकोण, विचारों, व्यवहार, ध ार्मिक विश्वासों, और समुदाय या समाज की रचना करने वाले व्यक्तियों के नैतिक सिद्धांतों में परिवर्तन है। इस प्रकार, सांस्कृ तिक परिवर्तन एक बहु–तथ्यात्मक प्रक्रिया है। एक जनजाति आदिम स्थिति के तहत रहने वाले लोगों का एक समूह है और अभी भी अधिक आधुनिक संस्कृति के लिए लोकप्रिय नहीं है। पूरे भारत के साथ–साथ विश्व के विभिन्न हिस्सों में भी जनजातियों की संख्या है। भारत की कुल आदिवासी आबादी का 55% से अधिक मध्य भारत में बिहार, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा और मध्य प्रदेश में रह रहे हैं और शेष जनजातीय आबादी हिमालयी बेल्ट, पश्चिमी भारत, द्रविड़ क्षेत्र और अंडमान, निकोबार और लक्षद्वीप में केंद्रित है। डी. एन. मजुमदार के अनुसार, जनजातीय शासक या अन्य द्वारा शासित कार्यों के किसी विशेष कार्य के साथ लोकप्रिय एसोसिएशन के साथ सामाजिक समूह के रूप में जनजातियों, अन्यथा, अन्य जनजातियों या जातियों के साथ सामाजिक दूरी को पहचानने वाली भाषा या बोली में एकजुट। उनमें से, संथाल एक महत्वपूर्ण जनजाति है जो भारतीय जनजातीय आबादी के 50% से अधिक का योगदान देता है। यह पेपर भारत की सामयिक स्थिति को समझाने की कोशिश करता है और विभिन्न सांस्कृतिक के साथ–साथ भोजन की आदतों, धार्मिक प्रथाओं, विवाह जैसी सामाजिक व्यवस्था और विभिन्न प्रकार की जागरूकता का भी पता लगाता है। सामाजिक परिवर्तन महत्वपूर्ण मुद्दों में से एक है, जो जीवन शैली के पैटर्न में विकास और परिवर्तन के स्तर को निर्धारित कर सकता है। एल. एम. लुईस का मानना है कि आदिवासी समाज छोटे हैं, उनके सामाजिक, कानूनी और राजनीतिक संबंधों की स्थानिक और लौकिक सीमा में प्रतिबंधित हैं और एक नैतिकता, ध र्म और इसी आयामों के बारे में दुनिया का दृष्टिकोण रखते हैं।

जनजातीय संस्कृति में परिणाम और परिवर्तन– सांस्कृतिक परिवर्तन विचारों, ज्ञान, व्यवहार, दृष्टिकोण, धार्मिक विश्वासों और समुदाय या समाज को बनाने वाले व्यक्तियों के नैतिक सिद्धांतों में परिवर्तन है। 'इस प्रकार, सांस्कृतिक परिवर्तन एक बहु–तथ्यात्मक प्रक्रिया है। राहा और डुबाश रॉय द्वारा जनजातीय संस्कृति में बदलाव लाने वाले कई कारकों के बारे में बताया गया है। सरकार द्वारा अनसुना उपाय, संचार सुविधाएं, शिक्षा का प्रसार, शहरीकरण की प्रक्रिया, व्यावसायिक गतिशीलता, सामुदायिक विकास परियोजनाएं, साथ लगातार संपर्क शहरी क्षेत्रों में पड़ोसी हिंदुओं, आदिवासी क्षेत्रों में पानी के बांधों का निर्माण, क्रिसटिनेस का प्रभाव, बैंक ऋण की सुविधाएं, आधुनिक चिकित्सा, सहकारी समितियां, आधुनिक कानून, नकदी और बाजार अर्थव्यवस्था, और सुधारवादी आंदोलनों आदि।

उदाहरण के लिए, जनजाति–जाति की बातचीत और विभिन्न राज्यों में कई जनजातियों के बीच उच्चारण की प्रक्रिया पाई जाती है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण उड़ीसा के घोराबर गांव में बिनय कुमार पटनायक के सबरस (जनजाति) के अध्ययन से पता चला है, जिसमें 280 लोगों के साथ कुल 235 घरों में 5 प्रतिशत शामिल हैं।

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-IV, Issues-22, YEAR- Oct.-Dec.-2021

इस जनजाति द्वारा संकृति–संक्रमण के दौर से गुजरने की प्रक्रिया निम्नलिखित परिवर्तनों में पाई जाती है–

जनजाति में संरचनात्मक परिवर्तन समतावाद (कार्यात्मक निर्भरता के साथ) को त्यागने और जाति व्यवस्था को स्वीकार करने में पाया जाता है और इस प्रकार समुदाय में स्तरीकरण की प्रणाली का परिचय देता है।

समुदाय अनुष्ठान श्रेष्ठता के आधारपर चार खंडों में विभाजित है, जो हिंदू वर्ण ढांचे से मिलता–जुलता है। क्रमशः चार वर्णों के शिकार और लड़ाई, पूजा, साधना और नृत्य और गायन जैसे चार विभाजनों के बीच व्यवसायों का कार्यात्मक वितरण है। अंतर यह है कि वर्ण व्यवस्था में रहते हुए, पूजा सर्वोच्च अनुष्ठान का दर्जा रखती है, इस जनजाति में यह पदानुक्रम में दूसरे स्थान पर है। दूसरी बात, साबरस जनजाति में पवित्रता और प्रदूषण अनुपस्थित है क्योंकि यह जाति व्यवस्था में पाया जाता है। इस प्रकार, सबरस को एक अलग 'जाति' के रूप में स्वीकार किया जाता है, न कि गांव में एक जनजाति के रूप में। सबरस के बीच जाति व्यवस्था की तरह, प्रत्येक उप–जाति की अपनी पंचायत होती है, जो समुदाय के रीति–रिवाजों और वर्जनाओं के पहरेदार के रूप में काम करती है।

सबरास के प्रत्येक उप–विभाजन का दावा तीन सबराओं से है, जो हिंदू पौराणिक कथाओं–महाभारत और रामायण में उल्लेख करते हैं।

(अ) हिंदू संस्कृति की छाप सबरस के विवाह के रीति–रिवाजों पर प्रमुख है, हालांकि अंतर–जाति (अंतर–खंड) विवाह अनुपस्थित है। पोलीगामी एक टैबू है। दुल्हन की कीमत दहेज से बदल दी गई है। सबरस द्वारा हिंदू लक्षणों को अपनाने को 'दोषारोपण' की घोषणा के रूप में कहा जाता है, क्योंकि हिन्दू संस्कृतिकरण 'नहीं है क्योंकि–

अभियोजन का लाभ 'आर्थिक लाभ' है और उच्च अनुष्ठान का दर्जा प्राप्त नहीं करता है। एक जाति समूह के रूप में प्रवेश करके, उन्हें स्थायी रूप से लकड़ी की कटाई और टोकरी बनाने का समुच्चय सौंपा गया है। वनों की कटाई के बाद, वे खेतिहर मजदूर बन गए हैं।

गतिशीलता के लिए अपनाया गया मॉडल ब्राह्मणवादी नहीं है, बल्कि वैश्य है, जो संस्कार श्रेष्ठता के लिए इकोनामिक श्रेष्ठता का आश्वासन देता है। चूँकि सबरा अपने कब्जे के लिए तेलियों पर निर्भर हैं, इसलिए उन्होंने (टेलिस) को अपने संदर्भ समूह के रूप में स्वीकार कर लिया। यदि हम भारत में जनजातियों की संस्कृति में परिवर्तन की जांच करते हैं, तो हम छः मुख्य परिवर्तन पाते हैं। ये इस प्रकार हैं–

आदिवासियों की जीवनशैली, विशेषकर जो अरबन क्षेत्रों में या उसके आसपास या संख्यात्मक रूप से प्रमुख गैर–आदिवासी आबादी के बीच में रहती है, उन्नत हिंदुओं के बड़ी संख्या में अपराधी संगठनों की नकल के कारण बदल गई है। उनके कई पारंपरिक लक्षणों को विदेशी लक्षणों से बदल दिया गया है।

परिवर्तन की प्रकृति ऐसी है कि जनजातियाँ अपनी असभ्यता को नहीं खो रही हैं और अपनी पारंपरिक सांस्कृतिक विरासत को भी। उन्हें 'हिंदूकृत' नहीं किया जा रहा है। हालाँकि, बोस (1953), दत्ता मजुमदार (1937), देवगांवकर (1990), राहा और देबाश रो ने आदिवासियों के उदाहरणों का जिक्र करते हुए कहा है कि वे (जैसे असम में) पाटी राभास (होस) में आदिवासियों के उदाहरणों का जिक्र करते हैं। जुआंग (उड़ीसा में), संथाल (बिहार में), भूमिज, उरांव, मुंडा और कोरकस (महाराष्ट्र में), आदि। हमारा तर्क यह है कि हिंदुओं के कुछ सांस्कृतिक लक्षणों को अपनाना हिंदुत्व की प्रक्रिया से गुजरना नहीं है। यह तथ्य कि ये जनजातियाँ अभी भी खुद को इस जनजातियों 'के रूप में वर्णित करती हैं, न कि हिन्दुस हमारे तर्क में महत्वपूर्ण हैं और हिंडोनेशन की प्रक्रिया को अस्वीकार करने का विवाद है।

भारत के कुछ हिस्सों में, आदिवासियों ने क्रिस्टीनिटी के कुछ लक्षणों को भी अपनाया है। नागा, मिजो, संथाल, उरांव, मुंडा, खारिया, आदि उत्तर पूर्व और उत्तर पश्चिम भारत में कुछ जनजातियाँ हैं जिन पर हम ईसाई धर्म की छाप पाते हैं। इसका सबूत दत्ता मजूमदार (1956), सहाय (1976), सच्चिदानंद (1964) और बोस (1967) द्वारा किए गए आदिवासियों के सूक्ष्म स्तर के अध्ययन द्वारा प्रदान किया गया है।

असम और उत्तर बंगाल के चाय बागानों में लाटूंगर के रूप में काम कर रहे छोटानागपुर के आदिवासी लोगों के बीच उनके धार्मिक विश्वासों और प्रथाओं की तुलना में उनके भौतिक जीवन में अधिक दिखाई देता है। जो लोग उद्योगों में काम करते हैं, उन्होंने उन्हें प्रदान की गई आर्थिक सुरक्षा के कारण व्यक्तिवादी दृष्टिकोण विकसित किया है जो बदले में उन्हें उनके पारंपरिक जीवन के प्रति उदासीन बना दिया है।

(अ) आदिवासी क्षेत्रों में कृषि– औद्योगिकीकरण ने आदिवासियों के सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन को इस हद तक प्रभावित किया है कि परिवार की संरचना, विवाह संस्था, प्राधिकरण संरचना, पारस्परिक संबंध और कबीले पंचायत के अधिकारों के कमजोर पड़ने पर देखा जा सकता है। 1981 में ट्रेड यूनियनों का भी आदिवासी मजदूरों पर बहुत प्रभाव पड़ता है। आदिवासी

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-IV, Issues-22, YEAR- Oct.-Dec.-2021

मजदूरों ने उन्हें एक 'वर्ग' के रूप में संगठित किया है जिसने अंततः सक्रिय राजनीति में भाग लेने के लिए एक व्यापक अवसर खोला है। आदिवासी जो लंबे समय से खानों और कोलियरी में काम करते हैं, अपने समुदाय के साथ लिंक को बनाए रखने में विफल रहते हैं, जिसके कारण वे खनन कार्य की लय के साथ खुद को समायोजित करने के लिए इतने मजबूर हैं कि वे कई पारंपरिक मान्यताओं और सामाजिक प्रथाओं को त्यागते हैं और अपना रवैया अपनाते हैं।

सच्चिदानंद (1964) ने बिहार के मुंडा और उरांव जनजातियों के बीच ऐसे परिवर्तनों का उल्लेख किया है। आर. चंद्रा (1989) ने उड़ीसा में जुआंगों और इरुला जनजातियों के सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन में भी इसी तरह के बदलाव का उल्लेख किया है जो परंपरागत रूप से शिकार, भोजन एकत्र करने और खेती में बदलाव के आदी थे, लेकिन अब वृक्षारोपण पर किसान और मजदूर बन गए हैं। उन्होंने प्रगतिशील दृष्टिकोण प्राप्त किया है और स्कूलों, बैंकों, सहकारी सामाजिक चिकित्सा, आदि की आधुनिक सुविधाओं का उपयोग करना शुरू कर दिया है।

पारंपरिक प्रथाओं का निर्वहन और आधुनिक विश्वासों और मूल्यों को अपनाना, क्योंकि आधुनिक ताकतों के प्रभाव हमेशा से ही आदिवासियों के लिए कार्यात्मक साबित नहीं हुए हैं। कई जनजातियाँ कुप्रथा की समस्या का सामना करती हैं। आर। जोशी (1984) के अनुसार बैगा जनजाति एक ऐसी जनजाति है, जिसके सदस्य पहले मजेदार और संतुष्ट थे, जिन्होंने शाम को नाचने और पीने के लिए महुआ का खर्च किया, जिनके पास भूमि थी, लेकिन उनके पास कोई सीमांकन नहीं था, जिसकी महिलाओं ने सोना पहना था और चिंता–भय के बिना चांदी के गहने, लेकिन अब बहुत भयभीत हो गए हैं और निहित स्वार्थ वाले लोगों द्वारा धोखा दिया गया है। सुख ने दुख को जगह दी है।

इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि आदिवासियों ने सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक रूप से विभिन्न ताकतों के संपर्क में आने के कारण आर्थिक रूप से बहुत कुछ बदल दिया है, जिससे उन्हें कई तरह से लाभ हुआ है और इससे उनके समुदायों में कई बुराइयाँ भी आई हैं। कई आदिवासी भूमि और जंगलों पर अपने अधिकारों से वंचित हो गए हैं और कई मामलों में वे साहूकारों, बड़े भूस्वामियों, व्यापारियों, व्यापारियों और अन्य लोगों द्वारा भागाये जा रहे हैं।

इसके बावजूद, हम वेरियर एलविन जैसे विद्वानों के विचारों का समर्थन नहीं कर सकते हैं जिन्होंने आदिवासियों को आंशिक या पूर्ण अलगाव में रखने की वकालत की और दृढ़ता से सलाह दी कि इन लोगों को यथासंभव अपने पारंपरिक और मूल आदिवासी जीवन को बनाए रखने की अनुमति दी जानी चाहिए।

जबकि हम नहीं चाहते कि आदिवासी संस्कृति नष्ट हो, साथ ही हम यह नहीं चाहते हैं कि जनजातियाँ पिछड़ी 'रहें और औद्योगिक विकास, व्यावसायिक गतिशीलता, शिक्षा और कल्याणकारी योजनाओं के लाभों से लाभान्वित न हों। आदिवासी दुनिया की अलग–थलग और अलग–थलग स्थिति, जिसके परिणामस्वरूप उनकी गरीबी, अशिक्षा, शोषण, आदि को इस दौर में बर्दाश्त नहीं किया जा सकता है। न्याय, ज्ञान, सहायता और सहयोग के लिए उनका प्रदर्शन आवश्यक है।

आदिवासी भारत में सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन– इंडियन सोशियोलॉजिकल सोसायटी (1994) के अध्यक्षीय भाषण में, योगेंद्र सिंह ने देखा राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक विकास के कारण हमारे समाज में बड़े व्यावसायिक और तकनीकी–सांस्कृतिक परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनों ने जातियों, जनजातियों, धार्मिक समूहों और सांस्कृतिक क्षेत्रों के बीच संबंधों को बढ़ावा दिया है। हम क्षेत्रों और जातीय सीमाओं पर इन सांस्कृतिक परिवर्तनों के प्रसार के प्रभाव के संकेत को देखते हैं। हालांकि, इन घटनाओं ने जातीयता, धर्म, जाति, भाषा और क्षेत्र के सिद्धांतों पर आयोजित लोगों की आत्म–चेतना और संकीर्ण सांस्कृतिक पहचान को भी सुदृढ़ किया है। राष्ट्रीय स्तर पर सांस्कृतिक एकीकरण की प्रक्रिया बढ़ी है, लेकिन साथ ही साथ सांस्कृतिक ऑटोनोमी की खोज में वृद्धि हुई है।

अनुभवजन्य स्तर पर हम पाते हैं कि आदिवासी इस तथ्य से अवगत हो गए हैं कि उनकी जातीय पहचान ईसाई और हिंदू धर्म द्वारा आक्रमण की है। इन दोनों धार्मिक पंथों के कट्टरपंथी क्षेत्र में सक्रिय हैं। हम इसे न केवल उनके राजनीतिक दायरों में, बल्कि उनके आंदोलनों में भी प्रकट होते हैं, जैसे कि "धर्म परिवर्तन के बावजूद आदिवासी धर्म में वापसी"।

चाहे परीक्षण हो या गैर–आदिवासी, पाक बहुवचन हमारी लोक संस्कृति और सभ्य समाज में निहित है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, जैसा कि कुछ राजनीतिक दलों और सांस्कृतिक संगठनों द्वारा प्रस्तावित किया गया है, हमारे देश की जातीय संरचना के अनुरूप नहीं है। इन परिचयात्मक टिप्पणियों के साथ, हम वर्षों से आदिवासियों के बीच देखे गए कुछ सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों को नीचे देते हैं।

सामाजिक स्तरीकरण में बदलावः जनजाति से कक्षा तक– पर्याप्त साहित्य सामाजिक नृविज्ञान में मौजूद है जो इंगित करता है कि आदिवासियों ने जातीयता से एक वर्ग का दर्जा प्राप्त किया है। एस.डी. बडगायन ने बताया कि छोटानागपुर में आदिवासी स्तरीकरण जटिल हो गया है। उदाहरण के लिए, इस क्षेत्र के मुंडाओं ने खुद को कक्षाओं में शामिल किया है।

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-IV, Issues-22, YEAR- Oct.-Dec.-2021

इसी तरह, घनश्याम शाह (1977) लिखते हैं कि भौतिक संपत्ति में अंतर भोजन, पोशाक, आवास आदि में खपत के अलग–अलग पैटर्न बनाता है, और उदाहरण के लिए, शिक्षा के स्तर, धार्मिक अभिविन्यास और वरीयताओं में समानांतर अंतर भी है।

राजनीतिक जीवन में। दक्षिण गुजरात की जनजातीय स्थिति के बारे में रिपोर्ट करते हुए, जान ब्रेमन ने कहा कि चौधरी जनजाति के बीच आज वर्ग का स्तरीकरण है।

यद्यपि देश के इस हिस्से में आदिवासियों के बीच वर्ग गठन मार्क्सवादी वर्ग चेतना के स्तर तक विकसित हो गया है, लेकिन निश्चित रूप से एक "वर्ग के तहत कृषिवादी" उभरा है, जिसमें आज आदिवासी जातियों के 60 प्रतिशत सदस्य शामिल हैं जो आर्थिक रूप से पिछड़े हैं, जैसा कि हमने पहले ही कहा है, संचयी असमानता की यह प्रक्रिया अभी तक एक कठोर वर्ग स्तरीकरण में क्रिस्टलीकृत नहीं हुई है। यह इस तथ्य को नहीं बदलता है कि एक बढ़ती हुई डिग्री के लिए अलग–अलग स्तर अपनी जीवन शैली और लिविंग स्थितियों द्वारा एक–दूसरे से अलग होने की शुरुआत कर रहे हैं।
20 वीं शताब्दी की पहली तिमाही के दौरान आदिवासियों ने कृषि की। उस समय उनके पास पर्याप्त भूमि थी। बढ़ते हुए, जातिवादी हिंदुओं ने आदिवासी इलाकों में प्रवेश किया और तब से आदिवासी भूमि इन गैर–आदिवासियों के हाथों में चली गई। नई 'टेकनोलॉजी' ने ऐसी स्थितियों का उत्पादन किया है, जिसमें विभिन्न प्रकार के माध्यम से गरीब किसान अमीर किसानों के लिए संचालित क्षेत्र की बढ़ती हिस्सेदारी खो चुके हैं। न केवल वह बल्कि गरीब किसान भी, विभिन्न तरीकों से, एक ग्रामीण सर्वहारा वर्ग में परिवर्तित हो रहा है।

नई जातीय आयाम– के.एस. सिंह, स्टीफन फुच और पी.के. बोस ने बहुत विस्तार से बताया है कि देश के सभी आदिवासियों में जातीय स्तरीकरण दिखाई दिया है। उत्तर–पूर्व के आदिवासियों ने ईसाई धर्म को अपने प्रमुख विश्वास के रूप में स्वीकार किया हैय यह गुजरात, मध्य प्रदेश, उड़ीसा और बिहार के आदिवासियों के बीच भी पाया जाता है।
स्वदेशी आदिवासी धर्म कई सुधार आंदोलनों में विभाजित हो गया है। फ्यूचर्स मध्य भारत के आदिवासियों के बीच मेसनिक आंदोलनों के बारे में रिपोर्ट करते हैं। आदिवासियों द्वारा स्वीकार किए गए धर्म का नया रूप है भगतवाद। इसने इन स्वदेशी लोगों के बीच एक जातीय स्तरीकरण पैदा किया है।

प्रवास– परंपरागत रूप से, सामाजिक मानवविज्ञानी ने आदिवासियों को लोगों के अचल भंडार के रूप में परिभाषित किया है। वे शायद ही अपने गाँव से आगे बढ़ते हैं। लेकिन रोजगार की तलाश ने उन्हें बड़े शहरों और खाड़ी देशों में काम करने के लिए प्रेरित किया है।

आज, ये आदिवासी अपने मूल गाँव के बाहर प्रवासी समूहों के रूप में काम कर रहे हैं। सरकारी नौकरियों ने भी उन्हें एक पद से दूसरे राज्य या राज्य के बाहर स्थानांतरित करने के लिए प्रोत्साहित किया है। इस प्रकार प्रवासन आदिवासियों के परिवर्तन के लिए एक शक्तिशाली कारक के रूप में उभरा है।

राजनीतिक समाजीकरण– रजनी कोठारी ने उन राजनीतिक ताकतों का विश्लेषण किया है जो भारतीय जनजातियों के बीच काम करती हैं। उनका कहना है कि मतदान, पार्टी के कामकाज, और सामाजिक सक्रियता के सार्वभौमिक अधिकार ने सभी आदिवासियों के बीच राजनीति के समाजीकरण की एक मजबूत प्रक्रिया शुरू की है। वे क्षेत्रीय, राज्य और केंद्रीय स्तरों पर समझौता और गठबंधन बनाने के लिए पर्याप्त चतुर बन गए हैं। विविध अर्थव्यवस्था–: आदिवासी निर्वाह अर्थव्यवस्था अब विविध हो गई है। उनका पारंपरिक व्यवसाय वन और वन उपज से संबंधित था। वे लकड़ी काटने के विशेषज्ञ रहे हैं। तटीय बेल्ट के साथ, वे मछली पकड़ने में माहिर हैं। लेकिन जातिवादी हिंदू व्यवस्था की तर्ज पर उनके पास कोई वंशानुगत पेशा नहीं है। इसने उन्हें किसी भी व्यवसाय में ले जाने के लिए सक्षम किया है जो उन्हें निश्चित समय पर उपयुक्त मिल सकता है।

स्थानीय से वैश्विक– एरिकसेन सामाजिक नृविज्ञान को छोटे स्थानों और बड़े मुद्दों के अध्ययन के रूप में मानते हैं। उनके अनुसार, वैश्वीकरण के वर्तमान युग में, आदिवासियों को अलगाव में नहीं रखा जा सकता है। छोटे स्थानों, अर्थात् आदिवासी घरानों को क्षेत्र, राज्य, राष्ट्र और दुनिया से जोड़ा जाता है। उदाहरण के लिए, विश्व की समस्याएँ, पर्यावरण, मलेरिया, कैंसर और एड्स की समस्याएँ आदिवासी गाँव की बड़ी समस्याएँ बन गई हैं। यह 1960 के दशक के दौरान मीडिया के सिद्धांतवादी मार्शल मकलुहान ने 'वैश्विक गांव' की अवधारणा को पेश किया था। इस धारणा का उद्देश्य आधुनिक जनसंचार माध्यमों के प्रसार के बाद दुनिया में नई सांस्कृतिक स्थिति के लिए जिम्मेदार होना था। दुनिया एक जगह हो गई थी। आदिवासी अब पहाड़ियों और जंगलों तक सीमित लोगों का एक बड़ा समूह नहीं हैं। वे वैश्वीकरण की बड़ी प्रक्रिया का हिस्सा बन गए हैं। प्रक्रिया एक जोरदार और निरंतर है, और आदिवासियों को यह तय करना है कि उन्हें किस दिशा में मार्च करना है। आदिवासियों का भविष्य उनके तर्कसंगत और सांस्कृतिक निर्णय पर टिका हुआ है।

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-IV, Issues-22, YEAR- Oct.-Dec.-2021

भारत में जनजातियों की स्थिति– कुछ समय पहले अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह की सेंटिनलीज जनजाति व्यापक चर्चा का विषय बनी हुई थी। माजरा कुछ यूँ था कि इस जनजाति के कुछ सदस्यों ने एक अमेरिकी पर्यटक की हत्या कर दी थी। गौरतलब है कि बाहरी दुनिया तथा बाहरी हस्तक्षेप के प्रति इनका रवैया अमूमन शत्रुतापूर्ण ही रहा है। इस प्रकार का वाकया पहली बार देखने को नहीं मिला है। जब–जब बाहरी लोगों ने इन जनजातियों के साथ संपर्क साधने की कोशिश की तब–तब इन्होंने हिंसक तेवर अपनाए। इनके इसे रवैये के कारण देश की आजादी से पहले ब्रिटिश शासन ने इन्हें Criminal Tribes Act,1871 के तहत क्रिमिनल जनजाति तक का दर्जा दे दिया था और इनके बच्चों को 6 वर्ष की आयु के पश्चात् इनके माता–पिता से दूर कर दिया जाता था। हालाँकि आजादी के बाद भारत सरकार ने इनके क्रिमिनल जनजातियों के दर्जे को बदलकर गैर–अधिसूचित जनजातियाँ (De-notified Tribes) कर दिया। ये जनजातियाँ मसलन डी–नोटिफाईड और नोमेडिकध्सेमि–नोमेडिक, सरल शब्दों में कहें तो घुमंतू जनजातियाँ आज भी कई समस्याओं का सामना कर रही हैं। समाज के अन्य सदस्यों के बीच इनकी दयनीय स्थिति किसी से छुपी नहीं है।

ऐसे में सवाल उठता है कि आखिर क्या कारण है कि ये जनजातियाँ बाहरी लोगों से अपना संपर्क नहीं साध पाती हैं? क्यों ये आधुनिक दुनिया से अलगाव महसूस करती हैं? सवाल यह भी है कि ये जनजातियाँ किन–किन समस्याओं का सामना कर रही हैं? इस लेख में इन्हीं सवालों के जवाब तलाशने की कोशिश की गई है। यहीं पर एक और सवाल मन में कौंधता है कि जनजाति किसे कहते हैं? इसकी परिभाषा क्या है? इस लेख के माध्यम से हम इन्हीं कुछ प्रश्नों का जवाब तलाशने की कोशिश करेंगे।

भारत में जनजातियाँ– जनजातियाँ वह मानव समुदाय हैं जो एक अलग निश्चित भू–भाग में निवास करती हैं और जिनकी एक अलग संस्कृति, अलग रीति–रिवाज, अलग भाषा होती है तथा ये केवल अपने ही समुदाय में विवाह करती हैं। सरल अर्थों में कहें तो जनजातियों का अपना एक वंशज, पूर्वज तथा सामान्य से देवी–देवता होते हैं। ये अमूमन प्रकृति पूजक होते हैं। भारतीय संविधान में जहाँ इन्हें 'अनुसूचित जनजाति' कहा गया है तो दूसरी ओर, इन्हें अन्य कई नामों से भी जाना जाता है मसलन– आदिवासी, आदिम–जाति, वनवासी, प्रागैतिहासिक, असभ्य जाति, असाक्षर, निरक्षर तथा कबीलाई समूह इत्यादि। हालाँकि भारतीय जनजातियों का मूल स्रोत कभी देश के संपूर्ण भू–भाग पर फैली प्रोटो ऑस्ट्रेलॉयड तथा मंगोल जैसी प्रजातियों को माना जाता है। इनका एक अन्य स्रोत नेग्रिटो प्रजाति भी है जिसके वंशज अण्डमान– निकोबार द्वीपसमूह में अभी भी मौजूद हैं। गौरतलब है कि अनेकता में एकता ही भारतीय संस्कृति की पहचान है और इसी के मूल में निश्चित रूप से भारत के विभिन्न प्रदेशों में स्थित जनजातियाँ हैं जो विभिन्न क्षेत्रों में रहते हुए अपनी संस्कृति के जरिये भारतीय संस्कृति को एक अनोखी पहचान देती हैं। वर्तमान में भी भारत में उत्तर से लेकर दक्षिण तथा पूर्व से लेकर पश्चिम तक जनजातियों के साथ–साथ संस्कृति का विविधीकरण देखने को मिलता है। भारत भर में जनजातियों की स्थिति का जायजा उनके भौगोलिक वितरण को समझकर आसानी से लिया जा सकता है।

जनजातियों का भौगोलिक वितरण– भौगोलिक आधार पर भारत की जनजातियों को विभिन्न भागों में विभाजित किया गया है जैसे–उत्तर तथा पूर्वोत्तर क्षेत्र, मध्य क्षेत्र, दक्षिण क्षेत्र और द्वीपीय क्षेत्र। उत्तर तथा पूर्वोत्तर क्षेत्र के अंतर्गत हिमालय के तराई क्षेत्र, उत्तरी–पूर्वी क्षेत्र सम्मिलित किये जाते हैं। कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, दक्षिणी उत्तर प्रदेश, बिहार, उत्तराखंड तथा पूर्वोत्तर के सभी राज्य इस क्षेत्र में आते हैं। इन क्षेत्रों में बकरवाल, गुर्जर, थारू, बुक्सा, राजी, जौनसारी, शौका, भोटिया, गद्दी, किन्नौरी, गारो, खासी, जयंतिया इत्यादि जनजातियाँ निवास करती हैं। यदि बात करें मध्य क्षेत्र की तो इसमें प्रायद्वीपीय भारत के पठारी तथा पहाड़ी क्षेत्र शामिल हैं। मध्य प्रदेश, दक्षिण राजस्थान, आंध्र प्रदेश, दक्षिणी उत्तर प्रदेश, गुजरात, बिहार, झारखण्ड, छत्तीसगढ़, ओडिशा आदि राज्य इस क्षेत्र में आते हैं जहाँ भील, गोंड, रेड्डी, संथाल, हो, मुंडा, कोरवा, उरांव, कोल, बंजारा, मीणा, कोली आदि जनजातियाँ रहती हैं। दक्षिणी क्षेत्र के अंतर्गत कर्नाटक, तमिलनाडु, केरल राज्य आते हैं जहाँ टोडा, कोरमा, गोंड, भील, कडार, इरुला आदि जनजातियाँ बसी हुई हैं। द्वीपीय क्षेत्र में अमूमन अंडमान एवं निकोबार की जनजातियाँ आती हैं। मसलन– सेंटिनलीज, ओंग, जारवा, शोम्पेन इत्यादि। हालिया चर्चा का विषय रहने के कारण यह जरूरी हो जाता है कि हम एक सरसरी नजर सेंटिनलीज जनजाति पर डाल लें।

सेंटिनलीज जनजाति– यह जनजाति एक प्रतिबंधित उत्तरी सेंटिनल द्वीप पर रहने वाली एक नेग्रिटो जनजाति है। 2011 के जनगणना आँकड़ों के अनुसार द्वीप पर इनकी संख्या 15 के आस–पास थी।

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-IV, Issues-22, YEAR- Oct.-Dec.-2021

जहाँ एक तरफ अंडमान द्वीप में चार नेग्रिटो जनजातियों– ग्रेट अंडमानी, ओंगेध्ओंज, जारवा तथा सेंटिनलीज का निवास है तो वहीं दूसरी तरफ निकोबार में दो मंगोलॉइड जनजातियाँ मसलन– निकोबारी और शोम्पेन का निवास है।

सेंटिनलीज के साथ ही अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह की अन्य जनजातियाँ– ग्रेट अंडमानी, ओंगे, जारवा तथा शोम्पेन भारत की विशेष रूप से अति संवेदनशील जनजातीय समूहों यानी Particularly Vulnerable Tribal Groups (PVTGs) में शामिल हैं।

"आज दुनिया की छठी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था का दर्जा भारत ने हासिल तो कर लिया है लेकिन अब भी एक तबका ऐसा है जो हाशिये पर है। इस तबके के अंतर्गत वे जनजातियाँ आती हैं जो सुदूरवर्ती इलाकों में जीवन यापन कर रही हैं और कई समस्याओं को झेल रही हैं।"

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाली जनजातियों की समस्याएँ– जनजातियाँ ऐसे इलाकों में निवास करती हैं जहाँ तक बुनियादी सुविधाओं की पहुँच न के बराबर है। लिहाजा ये बहुत सारी समस्याओं को झेल रही हैं। अगर बात करें सामाजिक समस्याओं की तो ये आज भी सामाजिक संपर्क स्थापित करने में अपने–आप को सहज नहीं पाती हैं। इस कारण ये सामाजिक–सांस्कृतिक अलगाव, भूमि अलगाव, अस्पृश्यता की भावना महसूस करती हैं। इसी के साथ इनमें शिक्षा, मनोरंजन, स्वास्थ्य तथा पोषण संबंधी सुविधाओं से वंचन की स्थिति भी मिलती है। आज भी जनजातीय समुदायों का एक बहुत बड़ा वर्ग निरक्षर है जिससे ये आम बोलचाल की भाषा को समझ नहीं पाती हैं। सरकार की कौन–कौन सी योजनाएँ इन तबकों के लिये हैं इसकी जानकारी तक इनको नहीं हो पाती है जो इनके सामाजिक रूप से पिछड़ेपन का सबसे बड़ा कारण है। इनके आर्थिक रूप से पिछड़ेपन की बात की जाए तो इसमें प्रमुख समस्या गरीबी तथा ऋणग्रस्तता है। आज भी जनजातियों के समुदाय का एक तबका ऐसा है जो दूसरों के घरों में काम कर अपना जीवनयापन कर रहा है। माँ–बाप आर्थिक तंगी के कारण अपने बच्चों को पढ़ा–लिखा नहीं पाते हैं तथा पैसे के लिये उन्हें बड़े–बड़े व्यवसायियों या दलालों को बेच देते हैं। लिहाजा बच्चे या तो समाज के घृणित से घृणित कार्य को अपनाने हेतु विवश हो जाते हैं अन्यथा उन्हें मानव तस्करी का सामना करना पड़ता है। रही बात लड़कियों की तो उन्हें अमूमन वेश्यावृत्ति जैसे घिनौने दलदल में धकेल दिया जाता है। दरअसल जनजातियों के पिछड़ेपन का सबसे बड़ा कारण उनका आर्थिक रूप से पिछड़ापन ही है जो उन्हें उनकी बाकी सुविधाओं से वंचित करता है। धार्मिक अलगाव भी जनजातियों की समस्याओं का एक बहुत बड़ा पहलू है। इन जनजातियों के अपने अलग देवी–देवता होते हैं। इसका सबसे बड़ा कारण है समाज में अन्य वर्गों द्वारा इनके प्रति छुआछूत का व्यवहार। अगर हम थोड़ा पीछे जायें तो पाते हैं कि इन जनजातियों को अछूत तथा अनार्य मानकर समाज से बेदखल कर दिया जाता थाय सार्वजनिक मंदिरों में प्रवेश तथा पवित्र स्थानों के उपयोग पर प्रतिबंध लगा दिया जाता था। आज भी इनकी स्थिति ले–देकर यही है। यही सब पहलू हैं जिसके कारण जनजातियाँ आज भी बाहरी दुनिया से अपना संपर्क स्थापित नहीं कर पा रही हैं। इन्हीं सब समस्याओं का हल ढूंढने के लिये सरकार द्वारा अपनाए गए कुछ विकासात्मक पहलुओं पर चर्चा करना मुनासिब होगा।

जनजातियों के उत्थान के लिये सरकार द्वारा उठाए गए कदम– संविधान के पन्नों को देखें तो जहाँ एक तरफ अनुसूची 5 में अनुसूचित क्षेत्र तथा अनुसूचित जनजातियों के प्रशासन और नियंत्रण का प्रावधान है, तो वहीं दूसरी तरफ, अनुसूची 6 में असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम राज्यों में जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन का उपबंध है। इसके अलावा अनुच्छेद 17 समाज में किसी भी तरह की अस्पृश्यता का निषेध करता है तो नीति निदेशक तत्त्वों के अंतर्गत अनुच्छेद 46 के तहत राज्य को यह आदेश दिया गया है कि वह अनुसूचित जातिध्जनजाति तथा अन्य दुर्बल वर्गों की शिक्षा और उनके अर्थ संबंधी हितों की रक्षा करे। अनुसूचित जनजातियों के हितों की अधिक प्रभावी तरीके से रक्षा हो, इसके लिये 2003 में 89वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम के द्वारा पृथक राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग की स्थापना भी की गई। संविधान में जनजातियों के राजनीतिक हितों की भी रक्षा की गई है। उनकी संख्या के अनुपात में राज्यों की विधानसभाओं तथा पंचायतों में स्थान सुरक्षित रखे गए हैं। संवैधानिक प्रावधानों से इतर भी कुछ कार्य ऐसे हैं जिन्हें सरकार जनजातियों के हितों को अपने स्तर पर भी देखती है। इसमें शामिल हैं– सरकारी सहायता अनुदान, अनाज बैंकों की सुविधा, आर्थिक उन्नति हेतु प्रयास, सरकारी नौकरियों में प्रतिनिधित्व हेतु उचित शिक्षा व्यवस्था मसलन– छात्रावासों का निर्माण और छात्रवृत्ति की उपलब्धता तथा सांस्कृतिक सुरक्षा मुहैया कराना इत्यादि। इसी के साथ केंद्र तथा राज्यों में जनजातियों के कल्याण हेतु अलग–अलग विभागों की स्थापना की गई है। जनजातीय सलाहकार परिषद इसका एक अच्छा उदाहरण है। इन्हीं पहलों का परिणाम है कि जनजातियों की साक्षरता दर जो 1961 में लगभग 10.3% थी वह 2011 की जनगणना के अनुसार लगभग 66.1% तक बढ़ गई। सरकारी नौकरी प्राप्त करने की सुविधा देने की दृष्टि से अनुसूचित जातियों के सदस्यों की आयु सीमा तथा उनके योग्यता मानदंड में भी विशेष छूट की व्यवस्था की गई है। सरकार ने भी जनजातियों के उत्थान की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं। मसलन अनुसूचित जनजाति (एसटी) के छात्रों के लिये एकलव्य आदर्श आवासीय विद्यालय योजना शुरू हुई है। इसका उद्देश्य दूरदराज के क्षेत्रों

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-IV, Issues-22, YEAR- Oct.-Dec.-2021

में रहने वाले विद्यार्थियों को मध्यम और उच्च स्तरीय शिक्षा प्रदान करना है। वहीं अनुसूचित जनजाति कन्या शिक्षा योजना निम्न साक्षरता वाले जिलों में अनुसूचित जनजाति की लड़कियों के लिये लाभकारी सिद्ध होगी। इन सराहनीय कदमों के बावजूद देश भर में जनजातीय विकास को और मजबूत करने की दरकार है। यह सही है कि जनजातियों का एक खास तबका समाज की मुख्यधारा में आने से कतराता है, लेकिन ऐसे में इनका समुचित विकास और संरक्षण भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

आगे की राह– हालाँकि सरकार अपने स्तर पर जनजातियों की स्थिति को सुधारने की दिशा में बेहतर प्रयास कर रही है लेकिन शासन के कार्यों में और ज्यादा तब्दीली की जरुरत है। योजनाओं का लाभ जनजातियों तक नहीं पहुँच पाता है। इस रुकावट को दूर करना होगा। साथ ही जनजातियों के प्रति मीडिया की उदासीनता को खत्म करने की दरकार है। अमूमन देखा गया है कि जब तक जनजातियों से संबंधित कोई बड़ा हादसा नहीं हो जाता है अथवा कोई सरकारी हस्तक्षेप नहीं होता तब तक प्रायः मीडिया भी सचेत नहीं होती है। मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ माना गया है तो यह जरूरी हो जाता है कि वह समाज के हर तबके के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन बखूबी करे। यहाँ पर राज्यसभा टी.वी. चौनल द्वारा चलाये गए 'मैं भी भारत' कार्यक्रम का जिक्र लाजिमी हो जाता है। जनजातीय जीवनचर्या पर आधारित इस कार्यक्रम ने कुछ हद तक जरूर भारत के जनजातीय समुदाय की पहचान को मुखर करने का काम किया है।

वहीं आर्थिक पहलुओं के स्तर पर इनसे जुड़ी समस्याओं को हल करने के लिये आदिवासी परिवारों को कृषि हेतु पर्याप्त भूमि देने तथा स्थानांतरित खेती पर भी रोक लगाने की आवश्यकता है। कृषि के अत्याधुनिक तरीकों से उन्हें अवगत कराना भी एक विकल्प है। रही बात समाज के सदस्यों की तो सभी आम नागरिकों का यह कर्त्तव्य होना चाहिये कि वे अपने हितों के साथ–साथ जनजातियों के हितों की भी रक्षा करें। जब ऐसा होगा तभी हम सेंटिनलीज जनजाति जैसे विशेष समूह के मनोविज्ञान को समझ सकेंगे और उनके जीवन में बेवजह हस्तक्षेप नहीं करेंगे। साथ ही जो जनजातीय समुदाय संपर्क में आने को इच्छुक हैं उनका स्वागत करने में भी हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिये।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. Dipankar & Toppo 2012 Socio & cultural traditions and women education in tribal society, a study on tribal population, International journal of current Research, vol-4-pp- 307&312.
2. Guha & Ismail& 2015 Socio&cultural changes of tribes and their impact on environment with special reference to santhal in West Bengal& Global institute for research education]vol 4 3 148&156.
3. B-D- Sharma, Tribal Society in India, Manak Publications Pvt- Ltd- New Delhi, 1997.
4. Bose- N-K- The Hindu method of tribal absorption, science and culture, National book trust, New Delhi, 1992, pp- 188 & 194.
5. http"//www-sociology-com tribal & society .
6. http://www-sociologyguide-com/tribal society/tribal struggles-php.
7. http://en-wikipedia-org/wiki/environmental change.
8. http://www&indiantribalheritage&org] page]id] 246.
9. http://www&tribalartreference-com/library-php.
10. www-sciencedirect-com.

*****